ISSN 2321 –0567
Vol. IV Issue I (Jan- 2016)

स्वामी विवेकानन्द के सन्दर्भ में ज्ञान, कर्म एवं भक्ति का स्थान

डॉ. सीमा शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत

गुरू नानक खालसा कॉलेज, करनाल

Paper Submission Date: 05th Jan. 2016
Paper Acceptance Date: 10th Jan. 2016

भारतीय संस्कृति में व्यक्ति का महत्त्व है या समाज का ? व्यक्ति समाज के लिए है। व्यक्ति का अर्थ है माया। अद्वैत सत्यं 'द्वैत मिथ्या'। शंकराचार्य का वेदान्त जोकि ब्रहम् सत्य जगत् मिथ्या'' के सिद्धान्त को स्वीकार करता है। इसका क्या मतलब है? कि व्यक्ति की गृहस्थी मिथ्या है? उसके लिए हम मान सकते है कि व्यक्ति केवल अपने ऊपर की दृष्टि रखें अर्थात् अपने ही भरण–पौषण पर दृष्टि रखें या कर्म करें तो वह मिथ्या है। यथा–केवलाघो भवति केवलादी अर्थात अकेला खाने वाला पाप खाता है। यदि हम केवल अपनी रूचि के अनुकूल समाज–सेवा का काम करते है और उसमें हृदय की भक्ति भर देते हैं, परन्तु इतने से केवल काम नहीं चलता। जब तक उस कर्म में ज्ञान नहीं आता, तब तक वह पूर्ण नहीं होता। कर्म में ज्ञान और भक्ति का समन्वय होना चाहिए।

ज्ञान दो प्रकार का है–एक आध्यात्मिक और दूसरा विज्ञान। उचित कर्म करने के लिए इन दोनों हाथों की आवश्यकता होती है। आध्यात्मिक ज्ञान का ही अर्थ है 'अद्वैत' सारी सृष्टि मेरी है, ये सब मेरे ही भाई है और इनकी सेवा करने के लिए मुझे ज्ञान, कर्म और भक्ति की आवश्यकता है। इस प्रकार की दृष्टि ही ज्ञान–विज्ञानात्मक दृष्टि है। यदि विज्ञान के पीछे यह अद्वैत का तत्वज्ञान, यह एकत्व का तत्वज्ञान यह आपस में भाईचारे का तत्वज्ञान न हो तो विज्ञान सारे संसार का नाश कर देगा। विज्ञान से संसार सुन्दर बनने की बजाय भयानक बन जाएगा। जब तक अद्वैत की दृष्टि प्राप्त नहीं होती, आत्मोपमता नहीं आती, तब तक विज्ञान व्यर्थ है।

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में न कोई आर्य है, न कोई अनार्य है, न कोई हिन्दू है, न कोई मुसलमान, सब केवल मानव है। उनकी दृष्टि में समाज को नवविचार देने वाला मनुष्य जितना बड़ा है, समाज को अनाज देने वाला किसान भी उतना ही बड़ा है, क्योंकि ईश्वर तो समभाव से वर्षा करेगा, लेकिन यदि किसान अपने पसीनें का जल खेत में न डाले तो फिर अनाज उत्पन्न कहाँ से होगा। फिर लोगों को खाने के लिए अनाज नहीं मिलेगा। पक्षी भूखें मर जाएगें यानि सारी सृष्टि भूखी मर जाएगी। इसी प्रकार महाविद्यालय या विश्वविद्यालय का शिक्षक जितना बड़ा है, उतना ही रास्ता साफ करने वाला मेहतर यानि सफाई कर्मचारी है। अतः स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में पहले सब लोग आपस में भाई–भाई बनो, सब एक ईश्वर के बनों।

लेकिन आज स्थिति विपरीत है किसान जो सब का अन्नदाता है, सब उसे तुच्छ समझते हैं, सब

उसका अपमान करते हैं। उसको सब दरवाजें पर बिठाते हैं। जिस दिन सबसे पहले किसान को बराबर का दर्जा दिया जाएगा, उस दिन समझा जाएगा कि भारतीय संस्कृति लोगों की समझ में आ रही है। लेकिन आज सबका पोषण करने वाले उस किसान के जीवनरूपी वृक्ष पर जीवित रहने वालों को ही मान–सम्मान मिल रहा है।

इन विचारों से ऐसा मालूम पड़ता है कि आज समाज में धड़ और सिर पृथक–पृथक हो गए है। अतः समाज में रहने वाला पुरूष मृतावस्था में पड़ा है। बुद्धि जीवी लोग, विचारशील लोग आज श्रमजीवी की कदर नही करते। लेकिन जब तक ये सिर धड़ों के पास नहीं जायेगें, राष्ट्र में जीवन पैदा नहीं हो सकेगा। श्रमजीवी और बुद्धिजीवी दोनों को पास–पास आने दीजिए। बुद्धिजीवी को श्रम करने दीजिए और श्रम करने वालों को विचारों का आनन्द लेने दीजिए। जब ऐसा होने लगेगा तब हमारे कर्म कितने पवित्र होंगे? क्योंकि जिस कर्म में हृदय उतर आता है, आत्मा उतर आती है उसकी कीमत कौन कर सकता है? उस कर्म से परमेश्वर मिलता है, मोक्ष या निर्वाण मिलता है।

'भक्ति विजय' में लिखा है कि कबीर बाजार से कपड़े सजाकर बैठते थे, लोग कपड़ों के नमूने देखते थे, लेकिन उन्हें खरीदने का साहस नहीं होता था। उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि इन कपड़ों की कीमत अनन्त होगी। वे उन्हें देखते हुए खड़े रहते थे। ठीक भी है, वे साधारण कपड़े नहीं थे। उन कपड़ों में कबीर का हृदय उतर आता था। इसी भाँति गोरा कुम्हार मटके बनाता था। वह उसका प्रिय कर्म था, लेकिन जिन ग्राहकों को मटके बेचे जाते थे, उनके लिए उसके मन में अपार प्रेम था। लोगों को धोखा देने का विचार तो उसके मन में कभी नहीं आता था। वह यह तो सोचता ही नहीं था कि आज बिकी हुई मटकी कल फूट जाए तो शीघ्र ही नहीं मटकियाँ बिक जाएगी। गोरा कुम्हार इस वृत्ति से मटकी बनाता था कि पिता के द्वारा खरीदे गए मटके उसके बच्चों के भी काम आए। अतः सच्चे हृदय से विचार–पूर्वक किया हुआ कोई भी सेवा कार्य मोक्ष दे सकता है। गीता में स्वकर्म को ही मोक्ष प्राप्त करने का साधन बताया गया है– **''स्वकर्मणा तमश्यर्च्य सिद्धिं विन्दमित मानवः''** केवल अपने सुख के लिए किया हुआ प्रत्येक स्वार्थी कर्म भारस्वरूप है। मन को उसका बोझ लगता है। यथा जब हम समुद्र में गोता मारते है तब कितने घनफुट पानी हमारे सिर पर रहता है, लेकिन हमें उस पानी का बोझ नहीं लगता है। लेकिन पानी से बाहर आइये अपने लिए एक घड़ा भरिए, यह घड़ा आपके सिर को कष्ट दिए बिना न रहेगा। यह घड़ा आपके लिए बोझ बन जायेगा। लेकिन जब कर्म जगत के लिए होता है फिर बोझ नहीं होगा। जन–सागर में डूबिये, अपने कर्म जनता के अथाह सागर में मिला दीजिए। फिर तो जीवन में संगीत पैदा हुए बिना न रहेगा।

शान्ताकारं भुजड़गशयनम् पद्मनाभं सुरेश्वरं,
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभा अंगम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिः घ्यानगम्यैहं,
वन्दे विष्णो भवभयहरं सर्वलोकैः एकनाथं।।

इस मन्त्र के माध्यम से भगवान विष्णु का वर्णन किया गया है ''भगवान सहस्त्र फन वाले शेषनाग के फन पर सोए हुए है, लेकिन वह शान्तिपूर्वक लेटे हुए है, इसका क्या अर्थ है? परमेश्वर करोड़ों कर्म

करता है। हम सो जाते है, लेकिन वह नहीं सोता। वह बादल भेजता है, तारों को चमकाता है, कलियाँ खिलाता हैं। यदि परमेश्वर सो जाए तो यह संसार अस्त–व्यस्त अर्थात रूक ही जाएगा। संसार का इतना प्रसार फैलाने वाले ईश्वर को कितनी गालियाँ मिलती होगी। लेकिन वह ईश्वर उस गाली और शाप की ओर ध्यान नहीं देता है। उसे जो उचित और हितकर प्रतीत होता है, उसे वह शान्तिपूर्वक अविरत रूप से कह रहा है।''

ईश्वर का यह वर्णन स्वामी रामकृष्ण परमहँस तथा श्री स्वामी विवेकानन्द महापुरूषों पर लागू होता है। ये महापुरूष भी इसी प्रकार शान्तिपूर्वक ध्येय पर नजर रखे हुए आगे बढ़ते जाते है। उनकी अपार निःस्वार्थता उनको अपार धैर्य प्रदान करती है, क्योंकि भय तो स्वार्थी को होता है। निःस्वार्थ वृत्ति को भय नहीं होता। उदाहरणतः महात्मा गाँधी नहीं जानते थे कि भेद किसे कहते थे। उनके रोम–रोम में अद्वैत समाया हुआ था, लेकिन इस भगवान की पूजा–सेवा वह शास्त्रीय दृष्टि से करना चाहते थे। वह विज्ञान की आवश्यकता का अनुभव करते थे। चरखे में सुधार करने के लिए उन्होंने एक लाख के पुरस्कार की घोषणा की। वह समाज तथा राष्ट्र में कल्याणकारी सुधार चाहते थे।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह बुद्धि का दीपक लेकर जाते थे। संसार को, सारी जनता को, सौन्दर्य–समृद्धि देने वाले विज्ञान की उन्हें आवश्यकता थी। वस्तुतः उनके अनुसार भारतीय संस्कृति मानो ज्ञानयुक्त, विज्ञानयुक्त व भक्तियुक्त शुद्ध कर्म ही है। परन्तु ज्ञान, कर्म और भक्ति हम तभी प्राप्त कर सकते है, जब हमारे अन्दर प्रेम हो। यदि मेरे मन में अपने भाई के लिए प्रेम होगा तो उसके लिए जो कर्म होगा, उसमें विज्ञान का उपयोग होगा। जब मन में कॉलेज के विद्यार्थियों के प्रति प्रेम होगा, तभी वह शिक्षाशास्त्र का अध्ययन करेगा, उसे उस ज्ञान से घबराहट नहीं होगी। प्रेम में कभी आलस्य होता ही नहीं है। यदि कर्म में प्रेम हो, आत्मा हो तो एक छोटे से कर्म से भी मोक्ष मिल सकता है। यथा रूक्मिणी का भक्तिभाव से भरा हुआ एक तुलसी पत्र सत्यभामा के सोने–चाँदी व हीरे–माणिक के ढेर से भी भारी सिद्ध होता है। अपने सर्वस्व का त्याग करने वाले शंकर जी की जटा का एक बाल कुबेर की सम्पत्ति से भी अधिक भारी सिद्ध होता है।

अतः भक्तिमय कर्म कीजिए जिसके लिए कर्म करना है, उसी को भगवान मानिये। यदि आप ऐसा करने लगे तो आपके जड़ कर्मो में कितनी सरसता उत्पन्न हो जाती है।

लेकिन आज समाज विपरीत दिशा की ओर जा रहा है। जब किसी नेता का आगमन होता है, तब हम जागते है, तब रास्ते साफ होते है, गटर खुलते है, लेकिन उस शहर में जो लाखों लोग रहते है वो क्या मुर्दे है? क्या उन्हें गन्दगी में रखना है? आज बड़े आदमी हमारे भगवान हो गए है। जब वे आते है तो हम अपना काम ठीक तरह से करने लगते है, लेकिन जब हम इस भावना से कर्म करेंगे कि लाखों लोग भी भगवान है, तब हम भाग्यशाली बनेगें। उस श्रेष्ठ कर्म का ही जप करना है। यह कर्म किस प्रकार उत्कृष्ट होगा, किस प्रकार तल्लीनतापूर्वक होगा, यही चिन्ता हमें रखनी चाहिए।

''यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि्'' यह बात गीता कहती है। जप यानि ''निदिध्यासन'' कल की अपेक्षा आज

का कर्म अधिक सुन्दर हो। इस प्रकार की भावना मन में रखना और मन में लगातार इसका अनुभव करना ही जप है। यही वह व्याकुलता है– निर्दोष सेवा करने की व्याकुलता, निःस्वार्थ सेवा करने की व्याकुलता।

सम्पूर्ण निर्दोष कर्म न होना, यह सोचकर मन में बुरा लगना ही धर्म है, अतः यह जो अपूर्णता के आँसू आँखों से निकलें है, उन्हीं में से भक्ति का जन्म होता है। जर्मन कवि गेटे ने एक जगह कहा है, ''जो कभी रोया नहीं, उसे ईश्वर दिखाई नहीं देगा।'' अपनी अपूर्णता के आँसू से आँखें निर्मल होती है। सर्वत्र ईश्वर दिखाई देने लगता है। ''आनन्द ब्रह्म्णो विद्वान् न विभेति कदाचन।''

आज भारतीय संस्कृति में कर्म, भक्ति, ज्ञान तो करीब–करीब अस्त हो चुका है। लोग पश्चिम के निवासियों को भौतिक कहकर तुच्छ मानते है और अपने को आध्यात्मिक वृत्ति का समझते है, लेकिन आज तो हम न आध्यात्मिक है, न भौतिक। केवल मुर्दे है। भारत में बहुत से भेदभाव है। ऊँच–नीच का प्रसार है। केवल मुँह से अद्वैत का जप किया जाता है और कृति से दूसरें को ठुकराया जाता है। अध्यात्म केवल ग्रन्थों में है। आज भारतीय संस्कृति में से अध्यात्म लुप्त हो चुका है।

ईशोपनिषद में यही बात प्रमुखता से कही है ऋषि ने विद्या व अविद्या संभूति व असंभूति का समन्वय करने की बात की है–

विद्यां च अविद्यां च यस्तद्वेद उभयं सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतश्नुते।।

अविद्या का यहाँ अर्थ है– भौतिक ज्ञान। इस भौतिक ज्ञान से हम मृत्यु को पार करते है। संसार के दुःख, रोग, संकट आदि का परिहार करते है। संसार यात्रा सुखकर बनाते है और विद्या से अमरत्व मिलता है। गीता में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को युद्ध में खड़े न रहने देकर उसे युद्ध करने के लिए उत्साहित करते है तो दोनों सेनाओं के मध्य में रथ स्थापित करने की बात करते है तथा साथ ही कहते है कि तेरा कर्म में अधिकार होना चाहिए, फल में नहीं–

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।''

अतः गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति साथ–साथ आते है। जब ज्ञान की नींव पर भक्ति और कर्म इकट्ठें होंगे, तभी कल्याण होगा। ज्ञान–विज्ञान की इमारत अध्यात्म की नींव पर खड़ी करना ही भारतीय संस्कृति का व्यवहारिक वेदान्त अर्थात् भव्य कर्म है। यह महान् कर्म भारत की राह देख रहा है।

इस प्रकार यह भारतीय संस्कृति पूर्ण है। यह किसी एक बात को महत्त्व नहीं दे सकती। वह मेल पैदा करने वाली है। यह प्रपंच और परमार्थ का रमणीय सम्मेलन है। ज्ञान, कर्म एवं भक्ति से मंगल रूपी समाज का जन्म होगा तथा पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आयेगा। यथा–

सर्वे भवन्तुः सुखिनः, सर्वे भवन्तुः निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभागभवेत्।

यही परमधाम का आनन्द है, जहाँ किसी प्रकार का व्यंग्य, दुःख, वैषम्य दुष्काल, दारिद्रय, अज्ञान, रोग, लड़ाई–झगड़ा, ईर्ष्या–द्वेष नहीं है तो सारे मिथ्याभिमान सारी दुर्भावनाएं, आलस्य, स्वार्थ, सारी भ्रामक कल्पना झटक कर फेंक दीजिए और इस ज्ञानमय, कर्ममय और भक्तिमय मार्ग पर आगे अग्रसर हो जाइये, क्योंकि–

''शत–शत भाषण से बहुत बड़ा है
एक हाथ भर भूमि जोतना।
मन्त्र जाप से बहुत बड़ा है,
एक हाथ भर खादी बुनना।
व्याख्यानों से बहुत बड़ा है,
अच्छा मटका धड़ लेना।
बड़ा तुम्हारे वैभव से है,
अच्छा जूता सी लेना।
बनो कृषक, बुनकर ऐ भाई,
और बनो रंगरेज देश के।
बनो कुम्हार, चमार सभी अब,
और बनो लोहार देश के।
झटक के आलस के सब भाव,
और रख श्रेष्ठ ज्ञान, कर्म।
भक्ति मार्ग पर दृढ़ पाँव,
फिर तु पाएगा अद्वैत वेदान्त,
ज्ञान, कर्म और भक्ति के रूप में।''

संदर्भ–सूची

1. श्रीमद्भगवदगीता
2. विष्णु पुराण
3. ईशेपनिषद्
4. श्रीमद्भगवदगीता
5. ऋग्वेद